अमृतचन्द्राचार्य। छठवीं गाथा है। छठवीं गाथा है और नय का अधिकार चलता है। निश्चय और उपचार अर्थात् निश्चय और व्यवहार, उनका जिन्हें ज्ञान है — ऐसे आचार्य, अनादि के अज्ञान का नाश करने में निमित्त हैं। यह निश्चय और व्यवहार दोनों का जाननेवाला तीर्थ का प्रवर्तन कर सकता है। फिर कहा कि वस्तु क्या? निश्चय, भूतार्थ है और व्यवहार, अभूतार्थ है। आत्मा का अभेद स्वभाव, वह भूतार्थ है, शेष सब अभूतार्थ है। व्यवहार उसे बताता अवश्य है परन्तु वह व्यवहार स्वयं अभूतार्थ है। इसका अर्थ हुआ कि '**भूतार्थ बोध विमुख संसार**' स्वभावसन्मुख के बोध से रहित, शुद्धस्वभाव के बोधरहित, अकेले व्यवहार के बोधवाला, वह संसार ही है। समझ में आया? इसका अर्थ यह हुआ कि भूतार्थ-विमुख, वह संसार और भूतार्थ-सन्मुख, वह मोक्ष। त्रिकालस्वरूप भूतार्थ अभेद, विकार से रहित का आश्रय कहो या सन्मुखता कहो। उसके सन्मुख है, वह मोक्ष के मार्ग में है। समझ में आया? उससे एकान्तरूप विपरीत व्यवहार से माननेवाले, वह अभिप्राय तो एकदम संसार है, ऐसा पाँचवीं (गाथा में) कहा।

तब कहते हैं, व्यवहार किसलिए कहते हैं? अज्ञानी, अकेला भिन्न आत्मा नहीं समझता, उसे जानने में नहीं आया। जो भूतार्थ वस्तु है; जो रागरहित, पर के सम्बन्ध रहित

www.vitragvani.com

ऐसी चीज इसके ज्ञान में अनादि से अज्ञानी को आयी नहीं; इसलिए उसे व्यवहार से भेद पाड़कर देव आदि के सम्बन्ध से उसके जीव की पहिचान-अभेद की (पहिचान) बताते हैं। समझ में आया? बताना है तो अभेदस्वरूप भूतार्थ, परन्तु अकेला आत्मा, रागरहित (आत्मा) कभी इसने देखा नहीं, जाना नहीं, माना नहीं, पहिचाना नहीं; इसलिए इसे भेद करके 'दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त हो, वह आत्मा' — इतना भेद पाड़कर समझाया है। यह भेद, व्यवहार है। समझाया है अभेद; अभेद का आश्रय लेने के लिये; अभेद के सन्मुख होने के लिये व्यवहार का उपदेश है। व्यवहार का उपदेश, व्यवहार के सन्मुख रहने का नहीं है। समझ में आया?

शुरुआत से ही बहुत वर्णन किया। देखो! चौथी, पाँचवीं, छठवीं (गाथा)। वस्तु, भगवान आत्मा भूतार्थ से सन्मुख है। भूतार्थस्वभाव ज्ञायकभाव के सन्मुख है, वह मार्ग में है; उसे फिर विकल्प आदि होते हैं, उनका वह जाननेवाला है, परन्तु धर्मी जीव का सन्मुखपना स्वभावसन्मुख होता है। समझ में आया? इसलिए छठवीं (गाथा) में कहा कि वर्णन भेद से उसे कहा, परन्तु उसे कहना है कि यह वस्तु जो अभेद है, उसके सन्मुख हो। भेद से कहा है, उसकी सन्मुखता छोड़ दे। समझ में आया? और भेद से कहते ही वह यदि अकेले भेद को ही पकड़े, वहाँ से निश्चय का लाभ बताया था न! वह भी कुछ लाभदायक है या नहीं? — ऐसा करके वह व्यवहार को ही पकड़े (तो) कहते हैं कि उसे देशना / उपदेश के योग्य नहीं है। जो हेतु कहना था, वह हेतु पकड़ता नहीं और जहाँ व्यवहार द्वारा कहा, वहाँ उसे पकड़ा; कहने का आशय तो अभेद को है। समझ में आया?

देखो! इस श्रावक के अधिकार से पहले उसे इस वास्तविक भूतार्थ के सन्मुख बोध होता है और अभूतार्थ का उसे ज्ञान होता है। समझ में आता है न? यह आठवीं गाथा में कहेंगे। पहले चौथी गाथा में कह गये है (कि) उसे दोनों का ज्ञान होता है। आठवीं में कहेंगे कि शिष्य को भी दो का ज्ञान होता है - ऐसा कहेंगे। सुननेवाले को भी आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति के सन्मुख का बोध और व्यवहार है, उसका भी उसे ज्ञान होना चाहिए कि व्यवहार है, तो वह शिष्य सुनने के (देशना के) योग्य है। समझ में आया? कहनेवाले की योग्य की बात तो पहले आ गयी। भूमिका बहुत सरस बाँधी है, आठ गाथाओं द्वारा। देखो!

www.vitragvani.com

अन्तिम शब्द आया, भावार्थ का-छठवीं (गाथा) का, **निश्चयनय के श्रद्धान बिना केवल व्यवहारमार्ग में ही प्रवर्तन करनेवाले मिथ्यादृष्टियों के लिये उपदेश देना निष्फल है।** जो अभेदस्वरूप के सन्मुख (होने के) लिये उपदेश किया था, उस उपदेश का आशय पकड़ा नहीं, उपदेश को पकड़ा। देखो! व्यवहार आया या नहीं? व्यवहार से कुछ लाभ है या नहीं पचास प्रतिशत? शोभालालजी! व्यवहार का पचास प्रतिशत, निश्चय के पचास प्रतिशत — ऐसा है या नहीं? भाई! यह तो व्यवहार-भेद पाड़कर समझाने का हेतु तो अभेद में सन्मुख होने के लिये है। समझ में आया? आहाहा! गजब.. भूमिका ही आठ गाथाओं में ऐसी बाँधी है न...! यह बात न समझे और व्यवहार से जहाँ कथन आवे, भेद से कथन आवे, संयोग के कथन से, उसे आत्मा को समझावे, उसे — भेद, संयोग को ही मान ले तो जो आशय कहना था, वह समझे नहीं तो उसे उपदेश किस प्रकार देना? समझ में आया? वह उपदेश के योग्य नहीं है। अब, ७ वीं में कहते हैं।

गाथा - ७

आगे केवल व्यवहारनय के श्रद्धान होने का कारण बताते हैं–

माणवक एव सिंहो यथा भवत्यनवगीत सिंहस्य।
व्यवहार एव हि तथा निश्चयतां यात्यनिश्चयज्ञस्य।।७।।

जिसे शेर का ज्ञान नहीं वह बिल्ली को ही सिंह जाने।
निश्चय से अनजान जीव व्यवहार–कथन निश्चय माने।।७।।

अन्वयार्थ : (यथा) जिस प्रकार (अनवगीत सिंहस्य) सिंह को सर्वथा न जाननेवाले पुरुष के लिये (माणवकः) बिलाव (एव) ही (सिंहः) सिंहरूप (भवति) होता है, (हि) निश्चय से (तथा) उसी प्रकार (अनिश्चयज्ञस्य) निश्चयनय के स्वरूप से अपरिचित पुरुष के लिये (व्यवहारः) व्यवहार (एव) ही (निश्चयतां) निश्चयपने को (याति) प्राप्त होता है।

टीका : 'यथा हि अनवगीतसिंहस्य माणवक एव सिंहो भवति' – जिस प्रकार निश्चय से (वास्तव में) जिसने सिंह को नहीं जाना है, उसके लिये बिलाव ही सिंहरूप होता है तथा 'अनिश्चयज्ञस्य व्यवहारः एव निश्चयतां याति' – उसी प्रकार जिसने निश्चय का स्वरूप नहीं जाना है, उसको व्यवहार ही निश्चयरूप हो जाता है अर्थात् वह व्यवहार को ही निश्चय मान बैठता है।

भावार्थ : जैसे बालक, सिंह को न पहचानता हुआ बिलाव को ही सिंह मान लेता है, उसी प्रकार अज्ञानी जीव निश्चय के स्वरूप को न पहचानता हुआ व्यवहार को ही निश्चय मान लेता है। उसका स्पष्टीकरण करते हैं। जो जीव अपने शुद्धचैतन्यरूप आत्मा के श्रद्धान, ज्ञान, आचरणरूप मोक्षमार्ग को नहीं पहचानता, वह जीव व्यवहारदर्शन, ज्ञान, चारित्र का साधन करके अपने को मोक्ष का अधिकारी मानता है। अरहन्तदेव, निर्ग्रन्थ गुरु, दयाधर्म का श्रद्धान करके अपने आपको सम्यग्दृष्टि मानता है और

www.vitragvani.com

किंचित् जिनवाणी को जानकर अपने को ज्ञानी मानता है, महाव्रतादि क्रिया का साधन करके अपने को चारित्रवान मानता है। इस प्रकार वह शुभोपयोग में सन्तुष्ट होकर, शुद्धोपयोगरूप मोक्षमार्ग में प्रमादी है; इसलिए केवल व्यवहारनय का अवलम्बी हुआ है। अतः उसे उपदेश देना निष्फल है। यहाँ प्रश्न उत्पन्न होता है कि ऐसा श्रोता भी उपदेश के योग्य नहीं है तो फिर कैसे गुण-संयुक्त श्रोता चाहिए? इसका उत्तर आगे देते हैं।

गाथा ७ पर प्रवचन

आगे केवल व्यवहारनय के श्रद्धान होने का कारण बताते हैं- हेतु क्या है? शिष्य व्यवहार को ही पकड़ता है। समझ में आता है न? इसलिए वह उपदेश के योग्य नहीं है — ऐसा कहने का आशय क्या है? यह सातवीं गाथा में कहते हैं। क्रमसर गाथा में ली हैं, हों!

माणवक एव सिंहो यथा भवत्यनवगीत सिंहस्य।
व्यवहार एव हि तथा निश्चयतां यात्यनिश्चयज्ञस्य।।७।।

समझ में आया? क्या कहते हैं? **जिस प्रकार सिंह को सर्वथा न जाननेवाले पुरुष के लिये बिलाव ही सिंहरूप होता है,....** बिलाव को सिंह बतलाया कि सिंह कैसा होता है? कि देख, यह क्रूर जिसने नख हों, ऐसे काले बाल हों, और बड़ी पूंछ हों और बिल्ली के मुँह पर और काले काँटे हों, ऐसी क्रूरता हो और जिसके नख हों। ऐसा बताया, ऐसा सिंह। वहाँ उस बिल्ली को सिंह मान लिया। बिल्ली, बिलाव, बिलाव, हमारे (गुजराती में) मींदड़ी कहते हैं। बिल्ली... बिल्ली... बिलाव है न इसमें? बिलाव कहो या बिल्ली कहो या मींदड़ी कहो! हमारे काठियावाड़ में मींदड़ी (कहते हैं)।

मुमुक्षु : उससे कुछ मिलता तो है न?

उत्तर : कुछ मिलता नहीं जरा भी। यह तो उसे बताकर वहाँ ले जाना है। 'मींदड़ी बाघ तणी मासी' — ऐसा आता है, काठियावाड़ में आता है ऐसा। बाघ नहीं।

कहते हैं **सिंह को सर्वथा...** बिल्कुल **न जाननेवाले....** ऐसे पुरुष को मींदड़ी-

www.vitragvani.com

बिल्ली से बतलाया कि देख, यह सिंह ऐसा होता है। **सिंहरूप होता है,....** कहा था न एक बार? ....लड़का, हाथी को नहीं जानता था, फिर उसे हाथी नहीं बताना था, उसे मच्छर बताना था, मच्छर। इतने पैर लम्बे करके बताया कि देख, मच्छर ऐसा होता है। मच्छर तो इतना (छोटा-सा) होता है, परन्तु वह लम्बे पैर करके उसे पैर की रेखाएँ बताने को नीचे से चौड़ी, अन्दर बारीक बताने को लम्बे चार पैर करके मच्छर बताया... देख, ऐसा मच्छर होता है। उसमें गाँव में हाथी आया, वह लड़का कहता है — लो, साहब! यह मच्छर आया। मच्छर को बड़ा लम्बा करके बताया, मच्छर का यथावतरूप बताने को; वहाँ उस मच्छर को वह हाथी मान लिया। जो बड़े चार पैर लम्बे और इसमें भी लम्बे थे, हों! मैंने चित्र ऐसे ठीक से देखा था, वहाँ नहीं था? विद्यालय में था। ऐसे लम्बे पैर चार, उसके सब निचले पैर जरा चौड़े बताने को, रोम बताने के लिये बड़े किये। (लड़का कहे) - लो, साहेब लो! हाथी आया। देखा? ...कि आपने नहीं बताया था? परन्तु वह तो मैंने मच्छर बताया था, मैंने तो मच्छर को बड़ा करके बताया था, मच्छर के रूप का यथावत् ज्ञान कराने को। यह हाथी ऐसा मच्छर नहीं है, यह तो हाथी है। इसी तरह बिल्ली का रूप बताकर, सिंह ऐसा होता है — ऐसा बताने से बिल्ली को ही वह सिंह मान लेता है।

निश्चयनय के स्वरूप से अपरिचित पुरुष के लिये.... देखो! **उसी प्रकार....** इसका दृष्टान्त। निश्चयनय के स्वरूप, **'अनिश्चयज्ञस्य'** जिसे निश्चय का भान नहीं कि वस्तु अभेद चैतन्यस्वरूप का ज्ञान, वह ज्ञान; उसकी श्रद्धा, वह श्रद्धा और उसके स्वरूप में रमना, वह चारित्र। ऐसे वस्तु के अभेद चैतन्यस्वरूप परमानन्द का जिसे ज्ञान नहीं है, उसकी जिसे श्रद्धा नहीं है, उसकी जिसे अन्तर रमणता नहीं है अथवा उसका ज्ञान ही नहीं है।

अपरिचित पुरुष के लिये व्यवहार ही निश्चयपने को प्राप्त होता है। उसे तो इस व्यवहार से समझाया तो व्यवहार, निश्चय हो गया। भेद करके समझाया तो भेद ही निश्चय हो गया। देह से आत्मा कहा, देह से; यह देव, वह आत्मा; मनुष्य,वह आत्मा (तो) देव और मनुष्य ही आत्मा हो गया। कहो, समझ में आया? कहते हैं, वह अज्ञानी तो देशना के भी योग्य नहीं है। यह ऊपर छठवीं (गाथा) में आ गया। कहो, समझ में आया इसमें?

www.vitragvani.com

टीका : 'यथा हि अनवगीतसिंहस्य माणवक एव सिंहो भवति'-जिस प्रकार निश्चय से (वास्तव में) जिसने सिंह को नहीं जाना है, उसके लिये बिलाव ही सिंहरूप होता है.... बिलाव, बिल्ली। कहो! **'अनिश्चयज्ञस्य व्यवहार: एव निश्चयतां याति'** इसका दृष्टान्त है; यह सिद्धान्त है। **उसी प्रकार जिसने निश्चय का स्वरूप नहीं जाना है,...** कि भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध के सन्मुख होना, वह निश्चय। वैसे सन्मुख से जिसने आत्मा को जाना नहीं। अभेद अखण्ड ज्ञायकमूर्ति चैतन्यज्योति पूर्ण है। ऐसे **निश्चय का स्वरूप नहीं जाना है, उसको व्यवहार ही निश्चयरूप हो जाता है....** उसे तो यह दया, दान, व्रत, भक्ति परिणाम, इससे यह बताया कि लो! यह करनेवाला, वह आत्मा; यह आत्मा। यह नहीं, हों! यह आत्मा। वहाँ उसे वही सर्वस्व हुआ — यह दया ही आत्मा हो गया। दया के भाववाला, वह आत्मा — ऐसा कहा; बतलाना है आत्मा। दया के भाव में रोकना नहीं, परन्तु वहाँ दया का भाव, वह आत्मा। दया के भावसहित, वह आत्मा। आत्मा में तो... दया का भाव ही आत्मा हो गया उसे। ऐसा हो गया कि यह। कहो, माँगीरामजी! क्या हुआ है? ऐसा हुआ है या नहीं?

आत्मा में यह राग होता है। दया का, महाव्रत आदि का आत्मा को राग होता है। ऐसा कहकर 'राग, वह आत्मा' — ऐसा बताना नहीं है परन्तु 'रागरहित, वह आत्मा', वह यह आत्मा — ऐसा आत्मा अभेद बताना था राग से भिन्न। उसके बदले राग को ही आत्मा मान लेता है। दया, दान, भक्ति, व्रत, तप, पूजा इससे (बताया), देखो भाई! ऐसा जहाँ निमित्त हो, वहाँ अन्दर अभेद सन्मुख की दृष्टि हो, उसे ऐसा व्यवहार कहने में आता है। उसे पंच महाव्रत के परिणाम, अट्ठाईस मूलगुण का राग — ऐसी जहाँ आगे निमित्तता हो, उसे अन्दर में नैमित्तिकता शुद्ध के स्वभाव की सन्मुखता की दृष्टि, ज्ञान और चारित्र होता है — ऐसा बताना था। वह आया था न? प्रवचनसार की गाथा में! ***'द्रव्य अनुसारी चरणम् चरणं अनुसारी द्रव्यं, द्रव्यं अनुसारी चरणं, चरणं अनुसारी द्रव्यं।'*** उससे कहा कि भाई! द्रव्य के अनुसार चारित्र होता है। अर्थात्? कि जो शुद्धस्वभाव को अनुसरण कर — सन्मुख होकर श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र किये हैं, उसे ऐसे ही पंच महाव्रत के, अट्ठाईस मूलगुण आदि के परिणाम होते हैं। 'दव्वस अनुसं चरणं' और 'चरण अनुसार द्रव्यम्' और

www.vitragvani.com

जिसे अट्ठाईस मूलगुण, पंच महाव्रत के परिणाम, देव–गुरु–शास्त्र की श्रद्धा, शास्त्र का ज्ञान हो, वहाँ आगे निश्चय ऐसा होता है। अभेद त्याग ऐसा होवे। उससे निमित्त ऐसा होवे, वहाँ नैमित्तिक ऐसा होता है — ऐसा बताने पर निमित्त को ही चिपट पड़ा। समझ में आया?

उसी प्रकार जिसने निश्चय का स्वरूप नहीं जाना है, उसको व्यवहार ही निश्चयरूप हो जाता है अर्थात् वह व्यवहार को ही निश्चय मान बैठता है। बताया कि देखो! ऐसे चौथे गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि को स्वभावसन्मुखता की दृष्टि, ज्ञान और आंशिक रमणता हुई है, वहाँ उसे भाव होवे तो देव–गुरु–शास्त्र की श्रद्धा का भाव, दया–दान का भाव, परमात्मा की भक्ति का भाव इत्यादि भाव होते हैं। वह भाव हो, वहाँ उसके सामने स्वभावसन्मुख के निश्चय दृष्टि, ज्ञान और रमणता होती है — ऐसा बताने पर वह पड़ा रहा, रह गया यह। निश्चय पड़ा रहा और व्यवहार रह गया। समझ में आया? यह रह गया (कि) देव–गुरु–शास्त्र की श्रद्धा, वह समकित। अन्दर यह स्पष्टीकरण करेंगे, हों! और शास्त्र का ज्ञान, वह ज्ञान; पंच महाव्रत के परिणाम, वह चारित्र, हो गया वहाँ। बताना था कि जिस–जिसको आत्मा के शुद्ध परमानन्द द्रव्यस्वभाव के सन्मुख जिसकी दृष्टि, ज्ञान, रमणता हुई है, उसे भूमिका प्रमाण में ऐसा व्यवहार होता है। देव–गुरु–शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत के परिणाम, शास्त्र का ज्ञान होता है — ऐसा बताने पर वह इसे ही व्यवहार और निश्चय मान बैठा कि यदि यह व्यवहार पहले आवे (तो) फिर निश्चय हो, ऐसा। वह कहा था या नहीं व्यवहार समझाने के लिये? इसलिए पहले व्यवहार, उसका फल निश्चय। वह अज्ञानी, व्यवहार को ही निश्चय मानकर बैठा है — ऐसा कहते हैं। समझ में आया? समझना, समझना और समझना।

भावार्थ : जैसे बालक, सिंह को न पहचानता हुआ बिलाव को ही सिंह मान लेता है,.... बिल्ली को सिंह मानता है।

मुमुक्षु : बड़े ने कहा है न?

उत्तर : बड़े ने कहा है क्या? उसने कहा कि सिंह ऐसा होता है, देख! सिंह ऐसा होता है, सिंह ऐसा होता है — इस प्रकार उसने कहा कि सिंह ऐसा होता है। ऐसा होता है, वहाँ वही मान बैठा। देख, निश्चय में व्यवहार ऐसा होता है। निश्चय जहाँ सम्यक्

www.vitragvani.com

सन्मुख दृष्टि आत्मा की हुई है, उसे व्यवहार ऐसा होता है; पाँचवाँ (गुणस्थान में) ऐसा व्यवहार होता है; छठवें (गुणस्थान में) ऐसा होता है, उसे ऐसा निमित्त होता है। वहाँ उसे चिपट पड़ा कि यह ही है — ऐसा कहते हैं। न्यालभाई! यह आश्रय, भाई! आ गया, हों! भूतार्थ विमुख में, भूतार्थ से विमुख कहा तो भूतार्थ के सन्मुख होना, इसमें आ गया। समझ में आया?

वस्तु अभेद चैतन्य प्रभु के सन्मुख, वह भूतार्थ और उससे विमुख अकेले व्यवहार और निमित्त का ज्ञान, वह संसार है, संसार है। इससे विपरीत, वह मोक्ष है। इसका अर्थ। समझ में आया? क्योंकि आत्मा अत्यन्त मुक्तस्वरूप ही है। उसका स्वरूप ही मुक्त है। उस मुक्तस्वरूप के सन्मुख दृष्टि, ज्ञान और चारित्र — यह इसका यथार्थ भूतार्थ भाव है। इस भाव की पहिचान कराने को उस व्यवहार से बात की, तब व्यवहार को ही चिपट पड़ा। बिल्ली, सिंह हो गयी, बिल्ली, सिंह हो गयी।

उसी प्रकार अज्ञानी जीव निश्चय के स्वरूप को न पहचानता हुआ.... भगवान आत्मा परमार्थभूत चिद्घन, आनन्दकन्द पूर्ण आनन्द का रूप, ऐसा जो अभेदस्वरूप भगवान आत्मा का (स्वरूप), उसे तो पहिचानता नहीं। **व्यवहार को ही निश्चय मान लेता है।** इससे पहले विकल्प आये कि इसे ऐसा व्यवहार होता है, ऐसा इसे व्यवहार होता है, निश्चयवाले को ऐसा व्यवहार होता है तो उस व्यवहार को निश्चय मान बैठा। व्यवहार है, इसे करते-करते हमारे निश्चय होगा। उसे सीधे निश्चय का कारण मान बैठा। समझ में आया? ऐसा आता है, हों! कारण और हेतु और सब। वह तो व्यवहारनय का कथन है। उसे छोड़कर स्वरूप के सन्मुख दृष्टि, ज्ञान करे तो शेष रहे हुए राग को व्यवहार कहा जाए — ऐसा है, भाई! बहुत यह... यह स्पष्टीकरण तो बहुत (सरस है।) पुरुषार्थसिद्धि-उपाय में तो बहुत सरस स्पष्टीकरण किया है। प्रायः भूतार्थ से विमुख बोध, वह संसार और उस व्यवहार को पकड़कर ऐसा माने कि यह निश्चय है तो वह मिथ्यादृष्टि है—ऐसे तो सीधा स्पष्टीकरण किया है। समझ में आया?

वही बताते हैं... निश्चय के स्वरूप को पहिचानता नहीं और व्यवहार को निश्चय मानता है, वही बताते हैं। **जो जीव अपने शुद्धचैतन्यरूप आत्मा के....** देखो!

www.vitragvani.com

यह भूतार्थ वस्तु। **जो जीव अपने....** वापस अपने; परमेश्वर के, दूसरे के–उसके नहीं। **अपने शुद्धचैतन्यरूप आत्मा के....** अपना शुद्धस्वरूप, चैतन्य शुद्धस्वरूप, अपना चैतन्य शुद्धस्वरूप आत्मा; उसे आत्मा कहा। उसका **श्रद्धान,....** देखो! उस भूतार्थ का श्रद्धान। अपना शुद्ध चैतन्यस्वरूप भगवान एकरूप वस्तु का श्रद्धान। देखो! उस भूतार्थ का श्रद्धान, उसका ज्ञान, उस अपने शुद्ध चैतन्यस्वरूप का ज्ञान। भाषा देखो! बहुत सरस लिखा है।

अपने जीव की अपनी, **अपने शुद्धचैतन्यरूप आत्मा के श्रद्धान,...** अपने शुद्धस्वरूप आत्मा का **ज्ञान,....** और अपने शुद्धस्वरूप आत्मा का **आचरणरूप मोक्षमार्ग को नहीं पहचानता,....** ऐसे मोक्षमार्ग को जानता नहीं। मोक्षमार्ग तो यह है। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा वस्तु — अस्ति भाव, वस्तु में अस्ति भाव। भूतार्थ है न? भूत – अस्ति, अर्थ–भाव। अस्ति अर्थात् होनेरूप भाव। भगवान आत्मा में शुद्ध चैतन्यस्वरूप, वह अस्तिरूप भाव है। समझ में आया? आत्मा में शुद्ध चैतन्यस्वरूप, वह विद्यमान, अस्तिरूप, अर्थ अर्थात् वह उसका भाव है। ऐसे शुद्धस्वरूप, चैतन्य शुद्धस्वरूप की श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन है; उसके सन्मुख का — शुद्ध चैतन्यस्वरूप का ज्ञान, वह सम्यग्ज्ञान है; शुद्ध चैतन्यस्वरूप अस्ति भावरूप आत्मा में रमणता, वह आचरण है। ऐसे **मोक्षमार्ग को....** ऐसे मोक्षमार्ग को पहिचानता नहीं। अभी तो पहिचानता नहीं, यहाँ बात लेते हैं। समझ में आया?

वह जीव व्यवहारदर्शन, ज्ञान, चारित्र का साधन करके अपने को मोक्ष का अधिकारी मानता है। देखो! भाषा। ऐसी सरस आयी, देखो! साधन शब्द है। आता है न व्यवहार साधन, पंचास्तिकाय में? समझ में आया? अपना शुद्ध ध्रुव चैतन्य निर्मल भाव–स्वभाव, वह आत्मा। ऐसे आत्मा के सन्मुख की अर्थात् उसके आश्रय की श्रद्धा, उसके आश्रय से प्रगट हुआ ज्ञान, अपना शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मा, भावस्वरूप आत्मा। कैसा भाव? कि त्रिकाल शुद्ध ध्रुवस्वरूप भाव — ऐसा आत्मा। उसका ज्ञान, उसमें अन्तर आचरण, उसका नाम चारित्र — ऐसे मोक्षमार्ग को पहिचानता नहीं। देखो! यह मोक्षमार्ग। समझ में आया? यह एक ही मोक्षमार्ग है; दूसरा मोक्षमार्ग नहीं है – ऐसा कहते हैं।

www.vitragvani.com

ऐसा शुद्ध चैतन्य भगवान स्वभाव आत्मा; भगवान स्वभाव अर्थात् महिमावन्त भाव; ऐसे आत्मा के श्रद्धा-ज्ञान और आचरण को तो जानता नहीं। मूल चीज है, उसे तो जानता नहीं। उसकी श्रद्धा का पता नहीं, ज्ञान का (पता) नहीं, आचरण का पता नहीं। **वह जीव, व्यवहारदर्शन,....** इसका स्पष्टीकरण करेंगे। व्यवहारदर्शन अर्थात् क्या? पहले में स्पष्टीकरण किया — अपने शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान, (यह) निश्चय मोक्षमार्ग (है)। वह जीव, व्यवहारदर्शन, व्यवहारज्ञान और व्यवहारचारित्र का **साधन करके अपने को मोक्ष का अधिकारी मानता है।** व्यवहारसाधन करके मोक्ष का अधिकारी मानता है। अर्थात् क्या? व्यवहारदर्शन अर्थात् क्या? पहले तो बात की कि अपने शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान-आचरण, वह निश्चय-यथार्थ-भूतार्थ। मोक्षमार्ग भी भूतार्थ और वस्तु भी भूतार्थ।

वह जीव व्यवहारदर्शन,.... अरहन्तदेव, निर्ग्रन्थ गुरु, दयाधर्म का श्रद्धान करके अपने आपको सम्यग्दृष्टि मानता है.... ठीक है? सेठ! स्वीकार में आ गये अब। पहले ऐसा कोई कहता था कि न्यालभाई ऐसा कहते हैं कि सोनगढ़ में आचरण का कोई साधन नहीं, इसलिए एकान्त है। कहा, कोई दिक्कत नहीं, यह तो धीरे-धीरे ठीक हो गये हैं कि मेरे... आये बिना नहीं रहे, बुद्धिवाला है। समझ में आया? आहाहा...! कहो, समझ में आता है? ठीक से सुनाई देता है न?

क्या कहते हैं कि **'माणवक एव सिंहो यथा भवत्यनवगीत सिंहस्य'** सिंह को नहीं जाननेवाले को तो बिल्ली ही सिंह हो गयी। इसी तरह **'व्यवहार एव हि तथा निश्चयतां यात्यनिश्चयज्ञस्य'** ऐसे निश्चय को नहीं जाननेवाले को तो व्यवहार ही निश्चयपने को प्राप्त हो जाता है। मींदड़ी कहा, मींदड़ी, बिल्ली... बिल्ली, 'बिल्ली बाघ की भासी' — क्या कुछ आता है न? दलपतराम में आता था।

कहते हैं, बहुत सरस बात है! ऐसी भूमिका आठ गाथा तक बाँधी है न? आठ गाथा तक भूमिका है, हों! फिर शुरु होता है। 'पुरुषार्थसिद्धि-उपाय', लो! पुरुषार्थसिद्धि-उपाय है। फिर सम्यग्दर्शन को आगे लेंगे। समझ में आया?

कहते हैं, बहुत सरस! अरे...! जीवों को, वास्तविक तत्त्व क्या है, उसके सन्मुख

www.vitragvani.com

की रुचि–ज्ञान नहीं; और वही करनेयोग्य है — ऐसा ज्ञान नहीं; इसलिए जहाँ उस व्यवहार साधन की व्याख्या शास्त्र में आवे कि यह व्यवहार साधन कहलाता है। देव–गुरु–शास्त्र की श्रद्धा पर विषय तो है न? वह आत्मा का विषय नहीं। आत्मा का विषय तो यह निश्चय, आत्मा का विषय है। सम्यग्दर्शन–ज्ञान निश्चय, इसमें आत्मा विषय आता है और इस व्यवहार विषय में आत्मा विषय नहीं आता। इसमें तो अरिहन्तदेव की श्रद्धा, वह परद्रव्य है; निर्ग्रन्थ मुनि–दिगम्बर सन्त मुनि–भावलिंगी मुनि, वे गुरु, उनकी श्रद्धा और दयाधर्म का श्रद्धान। दयाधर्म, अहिंसा, व्यवहार अहिंसा, हों! व्यवहार अहिंसा, दया, शुभभाव — उसका श्रद्धान करके अपने को सम्यग्दृष्टि मानता है। कहो! हमारे सम्यग्दर्शन है। सच्चे अरिहन्तदेव को, सच्चे निर्ग्रन्थ गुरु को मानते हैं और दयाधर्म — भगवान का मार्ग तो अहिंसा है। हम अहिंसा धर्म को मानते हैं। कौनसी अहिंसा? व्यवहार (अहिंसा)। दूसरे जीव को दुःख न देना, दूसरे जीव की दया पालना — ऐसे जो भाव, उसे हम मानते हैं। यह हमारा धर्म, यह हमारी श्रद्धा है। (इस प्रकार) अज्ञानी अपने को सम्यग्दृष्टि मानता है। यह (उसकी) झूठ बात है।

अरिहन्तदेव, निर्ग्रन्थगुरु, दयाधर्म का श्रद्धान तो राग है, वह तो शुभविकल्प है; वह सम्यग्दर्शन नहीं है; परन्तु जिसे आत्मा के स्वभावसन्मुख का निश्चय सम्यग्दर्शन हुआ, उसका व्यवहार राग, उसे व्यवहार सम्यग्दर्शन की उपमा दी जाती है। वह सम्यग्दर्शन नहीं है। धर्म, बस! केवली प्ररूपित धर्म अर्थात् दया पालन करो, किसी जीव को दुःख नहीं देना, भगवान... 'मत मारो, मत मारो' — यह बहुत सुना है। स्तुति में शुरुआत में पहले आता है — 'मत मारो, मत मारो जीव को' — यह भगवान का उपदेश। समझे न? ...यह जिनवाणी जान,....

कहते हैं कि, भाई! भाई! तेरी पूँजी महा चैतन्य और आनन्दकन्द प्रभु तू है। तेरे अन्तर में तो शुद्ध आनन्द, शुद्ध ज्ञान, शुद्ध श्रद्धा, शुद्ध शान्ति अन्दर पड़ी है। ऐसे पूर्ण शुद्ध चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा का तो तुझे विश्वास, उसकी दृष्टि, उसका भरोसा नहीं है; ऐसे आत्मा का तुझे ज्ञान नहीं है और ऐसे आत्मा का तुझे आचरण नहीं है; मात्र जहाँ व्यवहार से साधनरूप से, निमित्तरूप से पहिचान करायी कि देखो, भाई! ऐसा जहाँ हो —

www.vitragvani.com

स्वभावसन्मुख की दृष्टि, ज्ञान और रमणता (हो), वहाँ आगे उसे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का भाव होता है, उसे साधनरूप से कहने में आता है। साधन कहो या निमित्त कहो या व्यवहार कहो या उपचार कहो। व्यवहार का साधन, हों! समझ में आया? वह (अपने को) सम्यग्दृष्टि मानता है कि मैं तो सम्यग्दृष्टि हूँ। लो! उसमें वे कहें — देव-गुरु की श्रद्धा की (तुम) सम्यग्दृष्टि, जाओ! ...अरे! ...भाई! देव-गुरु तो पर हैं; उनकी श्रद्धा में स्व आया कहाँ से? वह तो पर आया। पर तो, पहली श्रद्धा करे, तब अभी पूर्ण वीतराग हुआ नहीं; इसलिए व्यवहार में वहाँ ऐसा निमित्तरूप श्रद्धान आये बिना नहीं रहता, होता है। होता है, व्यवहार होता है।

मुमुक्षु : निश्चय के लिये ही पकड़ता है न?

उत्तर : निश्चय तत्त्व भी सच्चा नहीं पकड़ा... तीन तो सच्चे पकड़े। देव-गुरु-धर्म, ऐसे। यह तो व्यवहार तत्त्व है। निश्चय तत्त्व ज्ञायकभाव शुद्ध (है), उसे पकड़े बिना, ऐसे व्यवहार भाव को व्यवहार नहीं कहा जाता, व्यवहार ही नहीं कहा जाता। कहो, समझ में आया?

भगवान आत्मा, शुद्धस्वभाव का पिण्ड प्रभु... उसके सन्मुख की दृष्टि, ज्ञान और आचरण — ऐसा शुद्ध स्वभावरूपभाव, उसे यहाँ मोक्षमार्ग कहा है। ऐसे मोक्षमार्ग के स्थान में-काल में ऐसी व्यवहार देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि होते हैं, उनका ज्ञान होता है, पंच महाव्रत के परिणाम भी होते हैं - ऐसा बताने पर उसे ही पकड़ लिया कि यह ही मेरा सच्चा तत्त्व है। समझ में आया? यह ही मेरी सच्ची श्रद्धा है। देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा, अहिंसा धर्म की श्रद्धा, व्यवहार से... अरे! ...दया तो जीव का स्वभाव है और यह पर की दया पालना जीव का स्वभाव है। सिद्ध में भी भगवान ने करुणा कही है। परन्तु कौन सी करुणा? समझ तो सही, भाई! वृत्ति का उत्थान होवे (कि) इसे बचाना अथवा इसे दुःख न देना, यह सब तो राग है।

किंचित् जिनवाणी को जानकर अपने को.... किंचित् जिनवाणी, देखा? किसलिए? वास्तविक जिनवाणी का अभिप्राय जाने, तब तो अन्दर स्वसन्मुख का ज्ञान होता है। जिनवाणी अर्थात् वीतरागी वाणी; वीतराग वाणी, वीतरागता को बतलाती है।

www.vitragvani.com

इसने तो **किंचित् जिनवाणी को जानकर....** देखो! किंचित्; भले ही ग्यारह अंग जाने तो भी किंचित् जिनवाणी। ऐसा हुआ या नहीं? नव पूर्व पढ़ा, परन्तु वह किंचित् है — ऐसा माने। क्योंकि जिनवाणी को वास्तविक कहना क्या है? अभेद स्वभाव चैतन्य की श्रद्धा, उसका आश्रय लेने को कहा था। जिनवाणी तो वीतरागता बताती है, वीतरागता की प्रसिद्धि करने को बताती है। जिनवाणी, राग की प्रसिद्धि बताती है? वीतरागता की प्रसिद्धि का हुआ ज्ञान, पश्चात् राग है, उसका ज्ञान करे, परन्तु जहाँ वीतरागता ही प्रसिद्ध नहीं हुई और अकेले राग को माने, वह तो कहते हैं कि वह व्यवहार को ही निश्चय मान बैठा।

किंचित् जिनवाणी को जानकर अपने को ज्ञानी मानता है,.... लो! शास्त्र का जानकार हुआ, परन्तु पहिचान नहीं हुई। छह द्रव्य और उनके गुण और उनकी पर्याय और उनका अमुक और उनका यह और उनका यह। यहाँ तो भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप ऐसा द्रव्य, उसका जिसे ज्ञान है, उसे ज्ञान कहते हैं। उसके ज्ञान बिना ऐसा ज्ञान, उसे किंचित् जिनवाणी का ज्ञान, उसे व्यवहार का ज्ञान-पुण्य बन्ध का कारण कहते हैं। समझ में आया? **किंचित् जिनवाणी को....** ऐसी भाषा गजब शुरु की है। किंचित् — कुछ अथवा किसी प्रकार से — व्यवहार से जिनवाणी जाने। भगवान आत्मा, जो अकेला ज्ञानस्वभाव चैतन्य सरोवर प्रभु है; उसका ज्ञान, वह वास्तविक यथार्थ पूरा सच्चा ज्ञान। ऐसे ज्ञान को तो जानता नहीं और शास्त्र का किंचित्पना जाने — ग्यारह अंग नौ पूर्व पढ़ा हो तो भी किंचित् है। व्यवहार, हों! समझ में आया? आहाहा...!

अपने को ज्ञानी मानता है,.... स्वयं ज्ञानी है — ऐसा मानता है। देखो! यह मिथ्यादृष्टि के लक्षण! समझ में आया? शुद्ध चैतन्यस्वभाव पूर्ण से भरपूर, उसका अन्तर -सन्मुख होकर ज्ञान हुआ, वह सच्चा ज्ञान और वह मोक्षमार्ग का ज्ञान। उसे न जानकर, ऐसे शास्त्र का जानपना कितना ही किंचित् थोड़ा - बहुत उघाड़ में किया, उसे मानता है कि यह मेरा ज्ञान, वह मोक्ष का मार्ग है। यह मार्ग है, भाई! धीरे-धीरे इससे (होगा)। धीरे-धीरे इससे होगा। जिनवाणी के जानपने से धीरे-धीरे सच्चा आत्मा का ज्ञान होगा — ऐसा माननेवाला, व्यवहार को ही निश्चय मानता है — ऐसा कहते हैं। व्यवहार की दिशा

www.vitragvani.com

बदलकर निश्चय में जाए। व्यवहार का यह ज्ञान रखकर, लक्ष्य में रखकर अन्दर में जाया जाता है — ऐसा है नहीं। समझ में आया?

महाव्रतादि क्रिया का साधन करके.... देखो! उसको शास्त्र... ज्ञान-दर्शन-चारित्र का साधन करके, और अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य अपरिग्रह — ऐसे पंच महाव्रत के परिणाम रखे। पंच महाव्रत के परिणाम, यह भी पुण्यबन्ध का कारण है, वह कोई धर्म नहीं। जो अट्ठाईस मूलगुण कहे, वह तो शुभराग है; चारित्र नहीं। अब उसे चारित्र कहते हैं अभी, लो! वह चारित्र है, वह चारित्र, कुन्दकुन्दाचार्य ने पालन किया था... अरे...! अरे...! भगवान! पूरी जिन्दगी पालन किया और तुम उसे जहर कहो! पुण्य को जहर कहो (तो) सुना कैसे जाए? महाव्रत के परिणाम, वह शुभराग है — ऐसा कहते हैं। इन महाव्रतों को सब चारित्र मानते हैं, ये सब। समझ में आया?

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह — ऐसा जो भाव, वह सब परलक्ष्यी भाव है, इसलिए शुभभाव है। उसे वह साधन मानकर मोक्ष का मार्ग मानता है। व्यवहार को-बिल्ली को ही सिंह माना; व्यवहार को ही निश्चय माना — ऐसी भाषा करते हैं यह तो भाई! साधन करते-करते निश्चय प्राप्त होता है। यह साधन—वास्तविक व्यवहार मोक्षमार्ग पहला है और फिर निश्चय है। शुभ उपयोग पहला मोक्षमार्ग है और शुभ उपयोग के बाद शुद्ध उपयोग, वह उसका फल है। शुभ उपयोग चौथे, पाँचवें, छठवें आदि होता है; फिर शुद्ध सातवें-आठवें आदि (में) होता है। आहाहा...! कहो, समझ में आया?

कहते हैं, **महाव्रतादि....** आदि अर्थात् समिति, गुप्ति, आदि शुभभाव पाले। निर्दोष आहार ले। मुनिपद के योग्य जो आचरण शुद्ध है, वह सब आ जाता है। **महाव्रतादि क्रिया का साधन करके....** क्रिया, देखो! यह साधन करके (अर्थात्) तीनों का साधन करके, **अपने को चारित्रवान मानता है।** हम स्वयं चारित्रवन्त हैं — ऐसा मानता है। निर्मल के अर्थ को प्रमाण नहीं रखते... अपनी विपरीतदृष्टि के कारण। **इस प्रकार वह शुभोपयोग में सन्तुष्ट होकर,....** लो! ये तीनों शुभराग हैं, शुभोपयोग है। कौन? अरिहन्त की श्रद्धा, निर्ग्रन्थ मुनि सन्त भावलिंगी मुनि की श्रद्धा, दया धर्म की श्रद्धा, यह शुभराग है। किंचित् जिनवाणी का जानपना, यह भी शुभोपयोग है, वह वास्तविक ज्ञान नहीं है और पंच महाव्रत के परिणाम भी शुभोपयोग है। समझ में आया?

www.vitragvani.com

ऐसे **शुभोपयोग...** अर्थात् शुभराग में **सन्तुष्ट होकर,....** सच्ची बात है यह। यह हमारा धर्म है, माँगीरामजी! ऐसा ही सुना था न अभी तक तो? कोई कहता है...? नहीं अपने... इससे ही निर्जरा है, इससे ही संवर है। महाव्रत से निर्जरा और महाव्रत से संवर। कहते हैं कि शुभोपयोग से जो स्वयं संवर-निर्जरा माने, वह व्यवहार को निश्चय मानता है, बिल्ली को सिंह मानता है। गजब, कठिन बात। समझ में आया?

इस प्रकार.... इस प्रकार दया धर्म को-दया के भाव को धर्म माने, देव-गुरु की श्रद्धा को समकित माने, पंच महाव्रत को, अट्ठाईस मूलगुण को; श्रावक होवे तो उसे बारह व्रत होते हैं न? बारह व्रत-माने हुए; उन्हें व्रत माने-चारित्र (माने) और उन्हें साधन मानता है। साधन है न वह? एकदम एकान्त हो जाए, वरना एकान्त हो जाएगा। वह एकान्त तो सब सम्यक् एकान्त कहलाये कि यह नहीं और यह है, तब उसे वास्तव में मोक्षमार्ग का साधन कहलाये। वह साधन नहीं है; साधन तो स्वरूप की अन्तर में दृष्टि, ज्ञान और रमणता (होना), वह मोक्ष का साधन है। आहाहा! समझ में आया? तीन का साधन करके अपने को मोक्ष का अधिकारी मानता है, ऐसी भाषा। फिर यहाँ अन्त में रखा यह। ऐसा **क्रिया का....** यह सब क्रिया करके, उसका **साधन करके अपने को चारित्रवान मानता है।**

इस प्रकार वह शुभोपयोग में सन्तुष्ट होकर,.... बस! शुभराग, कषाय मन्द। आहाहा! फिर क्या? **शुद्धोपयोगरूप मोक्षमार्ग में प्रमादी है....** परन्तु इस शुभोपयोग से हटकर, शुद्ध का अवलम्बन लेकर जो शुद्ध आचरण की, शुद्धस्वरूप की श्रद्धा-ज्ञान और आचरण — इनसे तो प्रमादी है, इनकी दरकार नहीं करता। परसन्मुख के भाव में ही मोक्षमार्ग मानकर स्वसन्मुख के लिये प्रयत्न नहीं करता। समझ में आया? यह पुरुषार्थसिद्धि-उपाय पहली-पहली बार वाँचन किया जाता है, हों! छपा नहीं था न! गुजराती में प्रकाशित हुआ है। पुस्तक बहुत अच्छी है। वजुभाई ने किया है न यह?...

इस प्रकार अनादि का अज्ञानी, शुभ और भेद से आत्मा की बात समझाई, कि देखो! यह आत्मा। इस आत्मा को पकड़ना, इसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। उसके बदले जहाँ व्यवहार की बात की, वहाँ व्यवहार को पकड़कर, उसे साधन माना। देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा, यह हमारे समकित का साधन है, मोक्षमार्ग है। शास्त्र का ज्ञान, वह

www.vitragvani.com

मोक्षमार्ग का साधन, मोक्षमार्ग (है), और पंच महाव्रत के, अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प, वह हमारे साधन। साधन पहले होता है न? फिर साध्य होता है न? लो! ऐसा कहते हैं। पहले यह साधन हो, फिर साध्य हो — यह बात खोटी है। ये वह साधन ही नहीं है — ऐसा यहाँ कहते हैं। यह तो स्वरूप का अन्तर साधन किया हो, उसे ऐसे शुभोपयोग को व्यवहार साधनरूप से कहा गया है। पहिचान करायी है कि चीज ऐसी हो, उसे भूमिका के योग्य (ऐसा व्यवहार होता है) — ऐसी पहिचान करायी तो उसे व्यवहार साधन कहा; परन्तु उसका यह अर्थ नहीं है कि उस साधन से यहाँ अन्तर निश्चय प्राप्त होता है। अभी प्राप्त होता है, बाद में भी धीरे-धीरे प्राप्त होता है — ऐसा नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : .....

उत्तर : नहीं छोड़ो, अर्थात् निश्चय का आश्रय नहीं छोड़ो और व्यवहार नहीं है — ऐसा मत मानो। व्यवहार नहीं है — ऐसा यदि मानोगे तो व्यवहार के—रत्नत्रय के जो परिणाम-प्रवृत्ति परिणाम हैं, वे परिणाम ही सिद्ध नहीं होंगे — ऐसा कहते हैं। यह अभी आयेगा।

अनादि से अज्ञानी को भूतार्थ भगवान आत्मा चैतन्यभाव सम्पन्न प्रभु की सन्मुखता की दृष्टि-ज्ञान और चारित्र; इसके सन्मुख का अर्थात् इसके आश्रय का यह भाव नहीं, परन्तु जब व्यवहार से उसे समझाया और व्यवहार साधन हो — ऐसा जब कहा, वहाँ उस व्यवहार को निश्चय मानकर सन्तुष्ट हो गया। अपनने बहुत किया, बहुत (किया) इतना बस है अब। उसमें से धीरे-धीरे क्षपकश्रेणी हो जाएगी, उसमें से शुद्धोपयोग आ जाएगा। शुभोपयोग में से क्षपकश्रेणी। इस शुभोपयोग में से क्षायिक समकित होगा, और क्षायिक समकित के बिना क्षपकश्रेणी होती नहीं; इसलिए शुभोपयोग से क्षपकश्रेणी चढ़ेगा; क्षपकश्रेणी से केवलज्ञान होगा, जाओ! और वापस शुभराग भी कर्म के कारण होता है, कर्म के बिना शुभराग होता नहीं। जितना राग अंश है, उतना हों! उसमें से छूटते... आहाहा! कितना अन्तर!

इस प्रकार वह शुभोपयोग में सन्तुष्ट होकर,.... शुभराग-कषाय की मन्दता हुई। कौन सी? देव-अरिहन्तदेव की श्रद्धा, गुरु निर्ग्रन्थ की श्रद्धा, दया धर्म की श्रद्धा,

www.vitragvani.com

शास्त्र का ज्ञान, पंच महाव्रत के परिणाम — यह शुभराग है, शुभोपयोग है, पुण्यभाव है, पुण्यबन्ध का कारण है। अबन्ध परिणामी नहीं; वह तो पुण्यबन्ध का कारण है। बन्धभाव है, वह बन्ध का कारण है। अबन्ध परिणाम तो अबन्ध-स्वभावी आत्मा के आश्रय से परिणाम प्रगटें, वह अबन्ध परिणाम है। उस अबन्ध परिणाम को तो जानता नहीं और इस बन्ध परिणाम को साधन मानकर मोक्ष का मार्ग मानता है। समझ में आया?

इस प्रकार वह शुभोपयोग में सन्तुष्ट होकर, शुद्धोपयोगरूप मोक्षमार्ग में प्रमादी है.... तथा पंचम काल में अभी शुद्धोपयोग तो है नहीं, जाओ! तो कहे — अब अपने को यही करने का रहा। अन्दर में सन्मुख होने के प्रयत्न की आवश्यकता नहीं, क्योंकि शुद्धोपयोग तो अभी है नहीं — ऐसा कहता है। आहाहा! शुद्धोपयोग, शुभ से हटकर चैतन्य शुद्धस्वभाव चैतन्य आत्मा का यह व्यापार, उसका उपयोग, उसका आचरण, शुद्ध चैतन्यस्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान और आचरण — ऐसा जो शुद्ध आचरण, शुद्धभाव-उसमें प्रमादी है, क्योंकि इसमें (शुभ में) सन्तुष्ट हो गया। इतना किया है, अब यह तो होगा ही। अपने मोक्षमार्ग है, साधनरूप से है तो साध्य प्रगट होगा। पंचम काल है तो नहीं होगा। कहो, कान्तिभाई! समझ में आया? ऐसा चलता है या नहीं?... दोनों अलग-अलग है, दोनों अलग-अलग है, दोनों विरुद्ध फलवाले हैं, दोनों की दिशा में अन्तर है। आहाहा!

इसलिए केवल व्यवहारनय का अवलम्बी हुआ है। इस कारण से। क्यों? कि उस व्यवहार को ही निश्चय मान बैठे। उसमें से होगा, उसमें से होगा, इसलिए वही कारण है, वही सच्चा साधन है। **इसलिए केवल व्यवहारनय का अवलम्बी हुआ है।** केवल व्यवहार। उस समय निश्चय अवलम्बन लेना, स्वभावसन्मुख जाना, वह तो पड़ा रहा। अकेले **व्यवहारनय का अवलम्बी हुआ है। अतः उसे उपदेश देना निष्फल है।** कहते हैं कि लाख बात कर तो भी इस व्यवहार को नहीं छोड़े। हमारे साधन कहा है, भगवान ने साधन कहा है, भगवान ने उपाय कहा है, उसे भी कारण कहा है, उसे भी हेतु कहा है।

तुझे हम व्यवहार से समझाते हैं, वहाँ तू व्यवहार को पकड़कर बैठे और हमारे

www.vitragvani.com

कहना क्या तुझे अब ? — ऐसा कहते हैं, मूल तो ऐसा कहते हैं। हमें तुझे सुनाना क्या ? सुननेवाले को जब हम व्यवहार से बात करते हैं, वहाँ तू व्यवहार को पकड़कर बैठा। देखो! ऐसा साधन होता है, हों! निश्चय ऐसा हो, वहाँ व्यवहार ऐसा होता है और वह निमित्त उस नैमित्तिक की प्रसिद्धि करता है। व्यवहार ऐसा हो, वह उस निश्चय का आश्रय, द्रव्य के आश्रयवाला कैसा भाव वहाँ होता है, उसे बतलाता है। समझ में आया ?

वह यहाँ पकड़कर बैठा कि देखो! तुमने कहा था या नहीं ? तुमने मौन रहने को कहा या नहीं ? तो तुम क्यों बोलते हो ? मौन से लाभ होता है या नहीं ? ऐसा कहते हो या नहीं तुम ? तो तुम किसलिए बोलते हो ? पकड़ा। ऐसे जहाँ ऐसा व्यवहार होता है और उससे निश्चय की पहिचान कराने के लिये कहा है; वहाँ उसने पकड़ा कि व्यवहार है या नहीं ? देखो! आया या नहीं ? वह व्यवहार को ही मानता है। देखा ? **इसलिए केवल व्यवहारनय का अवलम्बी हुआ है।** निश्चय के भानसहित का व्यवहार वहाँ निमित्तरूप से होवे, तब तो वह ठीक है। वर्तमान, हों! निश्चय के बाद व्यवहार - ऐसा नहीं। इन दो का भेद किया है। केवल व्यवहार-अवलम्बी। तब वह कहता है — नहीं, निश्चय-व्यवहार नहीं और निश्चय में अभी लक्ष्य आनेवाला है। हमारा शुद्धोपयोग लाने के लिये यह सब ग्रहण करते हैं। यह तो बाद का काल हुआ। उसकी बात कहाँ रही ? अभी वर्तमान व्यवहार के अवलम्बन में निश्चय का जरा भी अवलम्बन नहीं; इसलिए केवल व्यवहार अवलम्बन है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

बाद में होगा — ऐसा प्रश्न ही कहाँ है ? वर्तमान में अकेले व्यवहार के परिणाम... यद्यपि यह जो कहता है परन्तु पंच महाव्रतादि, उसका भी कहाँ ठिकाना है ? तो भी केवल व्यवहार का अवलम्बन लेकर, अवलम्बी हुआ है। ऐसा जहाँ उपदेश देने लगा, व्यवहार से समझाने लगे तो कहे — देखो! यह भी कुछ चीज़ है या नहीं ? लो! पाँचवीं गाथा में आया था न ? कोई कहता था, वकील सोलिसीटर। देखो! इस व्यवहार के बिना परमार्थ का उपदेश अशक्य है। देखो! व्यवहार के बिना परमार्थ प्राप्त नहीं होता। देखो, इसमें आया है। ठीक! (संवत्) १९८७ के साल में। अरे... ! यह तो उपदेश की बात है। व्यवहार का उपदेश है, व्यवहार से पाता है कहाँ ? व्यवहार को न अनुसरण कर, श्रद्धना — वहाँ ऐसा

www.vitragvani.com

नहीं? कहनेवाले ने व्यवहार कहा, उसे व्यवहार को अनुसरण करना नहीं। सुननेवाले को व्यवहार से कहते है, परन्तु उस सुननेवाले को भी व्यवहार को अनुसरण नहीं करना। अनुसरण करना निश्चय को। तब उसे व्यवहार से समझाकर कहा जाता है। क्या हो? ओहोहो! समझ में आया?

केवल व्यवहारनय का अवलम्बी हुआ है। अतः उसे उपदेश देना निष्फल है। नया पकड़ेगा तुरन्त वह। पानी में मनुष्य डूबता हो, उसे निकालने, तो अचानक उसका गला पकड़े, उसका हाथ ही पकड़े, हाथ खुले रखकर पकड़े, हाथ से तो पकड़े, इसलिए दोनों जाएँ, दोनों मर गये बेचारे। एक भाई बहता था, दूसरे भाई को (लगा) लाओ न, जाऊँ; वहाँ बहते हुए उसे पकड़ा, दोनों गये, मर गये। बहुत करके (शायद) तम्बोली का साला है, धीरुभाई! एक बार... नहाने गये थे तो वह चला... इसी प्रकार व्यवहार से जहाँ बात की तो पकड़ा उसे। देखो! यह व्यवहार भी कारण है, साधन है। निश्चय... व्यवहार, निश्चय पकड़ा इसने। इसे उपदेश निष्फल है। उपदेश देने का फल (कुछ नहीं।)

यहाँ प्रश्न उत्पन्न होता है कि ऐसा श्रोता भी उपदेश के योग्य नहीं है.... लो! क्या प्रश्न उत्पन्न होता है? कि **ऐसा श्रोता भी उपदेश के योग्य नहीं है....** यह वहाँ गया। **यहाँ प्रश्न उत्पन्न होता है कि ऐसा श्रोता भी उपदेश के योग्य नहीं है....** ऐसा।

तो फिर कैसे गुण–संयुक्त श्रोता चाहिए? समझ में आया? ऐसे श्रोता जब उपदेश के योग्य नहीं। **'व्यवहार एव हि तथा निश्चयतां यात्यनिश्चयज्ञस्य'** — ऐसा कहा न? जो, व्यवहार से निश्चय प्राप्त हो जाता है (–ऐसा मानता है), वह तो श्रोता के योग्य नहीं। **तो फिर कैसे गुण–संयुक्त श्रोता चाहिए?** सुननेवाले में कितनी योग्यता सुननेवाले की चाहिए, इसकी बात करते हैं, लो! कहनेवाले (वक्ता) की योग्यता की बात चौथी गाथा में कही। समझ में आया? यह सातवीं गाथा है। चौथी में कहा — मुख्य-उपचार का। यहाँ व्यवहार-निश्चय कहते हैं। वहाँ मुख्य-उपचार शब्द था। **तो फिर कैसे गुण–संयुक्त श्रोता चाहिए?** लो! एकदम, श्रोता कैसे गुणवाला होना चाहिए? ऐसे श्रोता यह समझ सके नहीं तब तो उल्टा मारेगा — ऐसा कहते हैं। **इसका उत्तर आगे देते हैं।** हो गया समय.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)